भारतीय नेताओं की दृष्टि में

तिब्बत

तथा

लोकसभा दस्तावेज़

इन्फरमेशन एवं इंटरनेशनल रिलेशंस विभाग
तिब्बती सचिवालय
गंगचेन किशोंग, धर्मशाला (हि० प्र०)

अनुवाद : अर्नेस्ट एल्बर्ट

भूमिका

तिब्बत भारत का पड़ोसी ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण एशिया के स्थाइत्व, उसकी दो महाशक्तियों भारत व चीन के लिए सामरिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण राष्ट्र है। मैं उन परिस्थितियों का, यहां पर कतई खुलासा नहीं करुंगा, जो संभाली जा सकती थीं, किन्तु जिनके कारण दूरगामी प्रतिकूल परिणाम निकले जिन्हें तिब्बत तो झेल ही रहा है—भारत की जनता को भी 9000 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष सीमा सुरक्षा के नाम पर भरने पड़ रहे हैं। ऐसे उदाहरण कम मिलते हैं जहां एक शांतिप्रिय मित्र की अदूरदर्शिता की सज़ा उसके धार्मिक, शांतिप्रिय पड़ोसी को इतनी देर तक झेलनी पड़ रही हो।

किसी भी राष्ट्र द्वारा एक छोटे, शांतिप्रिय राष्ट्र पर बलात् कब्ज़ा कर लेने से, वहां पर लाखों की संख्या में अपनी जनसंख्या बसा देने से इतिहास तो नहीं बदल जाता। दुर्भाग्य से चीनी शासक ऐसा ही सोचते हैं। अपने देश से दूर निष्कासन में परम पावन दलाई लामा जी तथा उनकी सरकार के नेतृत्व में हम एक ऐसे महान् राष्ट्र में रह रहे हैं जिसने हमें प्यार दिया, सहयोग दिया, सहायता दी। तथा इस सबसे बढ़ कर दिए प्रेरणा तथा मनोबल, अपने स्वतन्त्रता-संघर्ष के उदाहरण से।

मुझे प्रसन्नता है कि तिब्बत, भारतीय जनता के मन में छुपा, टिमटिमाता एक ऐसा प्रकाशबिन्दु है जो अपनी उपस्थिती बराबर बतला रहा है। वरना क्या है ऐसा कि चीनी झूठ भारतीय जनता को अब तक भी गुमराह नहीं कर पाया कि जिसे चीन, भारत-चीन सीमा कहता आ रहा है वह वास्तव में भारत-तिब्बत सीमा है। हमारे भारतीय भाईयों बहनों से जो प्रेम, सद्भावना, सहयोग हमें मिल रहा था उसमें, मैं विश्वास से कह रहा हूं बढ़ोतरी हो रही है, तभी चीन झुंझला भी रहा है। भारत की असली सीमा चीन के साथ थी या तिब्बत के साथ, इसके लिए सिर्फ 1954 से पहले वाले नक्शों को देख लेना काफी रहेगा। इस प्रकाशन से भी यह प्रश्न स्पष्ट हो जायेगा।

यह प्रकाशन तथा इससे उगते उत्तरदायित्व को अपने भारतीय भाईयों बहनों के हवाले करते हुए मुझे विशेष प्रसन्नता हो रही है।

आपका,
तेम्पा सरिंग
इन्फरमेशन व इंटरनेशनल रिलेशंस विभाग
केन्द्रीय तिब्बती सचिवालय
गंगचेन किशौंग, धर्मशला, हि. प्र.
176215 (भारत)

डा० राजेन्द्र प्रसाद के तिब्बत पर विचार

आज़ादी सबसे पवित्र वरदान है—इसे हर ढंग से सुरक्षित रखा जाना चाहिए—हिंसा या अहिंसा से। इसलिए तिब्बत को चीन के लोह-पाश से आज़ाद करवा कर तिब्बतियों को सौंपना होगा। सभी क्षेत्रों में हमारी सैकड़ों सैन्य-चौकियां हैं, यदि चीन ने धोखे से उनमें से कुछ पर कब्ज़ा भी किया है तो हमें घबराना नहीं है। हमारे सैनिक बहादुरी में प्रसिद्ध हैं, वे जल्दी चीनियों को खदेड़ देंगे।

आवश्यक हो गया है कि हम तिब्बत में जाकर शत्रु को भगाएं और तिब्बत को हर हालत में आज़ाद कराएं। जब चीन ने हमें धोखा दे ही दिया है तो हमारा कर्तव्य बनता है कि हम तिब्बत को आज़ाद कराएं, तिब्बत वापिस तिब्बतियों के हवाले करें, आप सबको इस पावन काम के लिए सरकार के हाथ मजबूत करने होंगे—दान देकर, फौज में भर्ती होकर। हमने अहिंसा से दुनिया की सबसे बड़ी ताकत को अपने देश से भगाया, अपनी आज़ादी फिर से पाई। महात्मा गांधी के अहिंसात्मक आंदोलन से जो आज़ादी हमने पाई। उसकी सुरक्षा के लिए हमें हिंसा भी अपनानी पड़ी तो हम पीछे नहीं हटेंगे। आज़ादी को कैसे बचाना है यह समय इस बात पर सोच विचार का नहीं है, यह समय है शत्रु पर करारा हल्ला बोलने का। यदि कुछ चीनी हमारे क्षेत्रों में घुसपैठ करते हुए दिख जाते हैं, हमें देखना होगा कि उन्हें खाने को कुछ न मिले, सिर छुपाने को कुछ न मिले, मरणोपरान्त उन्हें भूमि का छोटा सा टुकड़ा भी न मिले दफनाए जाने को।

जब हम हिन्द-चीनी-भाई-भाई के नारे लगा रहे थे, चीन के साथ भावविभोर हो रहे थे चीन क्रूर धोखे से हमारे क्षेत्र निगल रहा था, और जब हमने उसे अपने क्षेत्रों से भगाने के कदम उठाए तो उसकी धूर्तता देखो, वो चिल्लाया कि भारत ने उसपर, उसके क्षेत्रों पर आक्रमण कर दिया है.....

पटना में विशाल जन सभा को
राजेन्द्रबाबू के भाषण के अंश

24 अक्तूबर, 1962

पंडित जवाहर लाल नेहरु के तिब्बत पर विचार

किसी भी राष्ट्र के लिए किसी भी ऐसे क्षेत्र पर अपने आधिपत्य या प्रभुत्व के बारे में बोलना अनुचित है जो उसके अपने राष्ट्र से बाहर हो। अभिप्राय यह कि क्योंकि तिब्बत चीन जैसा कतई नहीं है इसलिए तिब्बतियों की इच्छाओं को ही शरोधार्य मानना होगा न कि किसी कानूनी या संवैधानिक तर्क को। मेरे विचार में यही एक उचित नुक़्ता है। और तिब्बतवासी अपने अधिकारों पर दृढ़ता से खड़े रह पाते हैं या नहीं, यह अलग बात है। हम भी इतने शक्तिशाली हैं या कोई अन्य राष्ट्र ही, जो देखे कि तिब्बत के साथ न्याय हो, यह भी एक अलग बात है। परन्तु यह कहना ठीक है, उचित भी तथा चीनी सरकार को यह बताने में मुझे कोई कठिनाई भी नहीं कि उसके पास चाहे तिब्बत पर प्रभुत्व या आधिपत्य के अधिकार हैं या नहीं है, परन्तु जिन सिद्धांतों को मैं सर्वोच्च मानता हूं, उनके अनुसार तिब्बत के बारे में आखिरी आवाज़ तिब्बत के लोगों की ही होनी चाहिए और किसी की नहीं।

लोकसभा : 7 दिसंबर 1950

पंडित जवाहरलाल नेहरु का अंतिम पत्र

देहरादून
24 मई, 1964

मेरे प्रिय डा. गोपाल सिंह, :

दिनांक 20 मई का पत्र मिला।

तिब्बत के लिए वर्तमान परिस्थितियों में हम क्या कर सकते हैं मुझे स्पष्ट नहीं है। संयुक्त राष्ट्रसंघ में तिब्बत पर प्रस्ताव पास करवाने से भी कुछ नहीं होने वाला क्योंकि उधर चीन का प्रतिनिधित्व नहीं है। तिब्बत में जो हुआ है हम उससे उदासीन कतई नहीं परन्तु वहां कोई ठोस कदम लेने में असमर्थ हैं।

आपका शुभचिंतक
(जवाहरलाल नेहरु)

तिब्बत पर सरदार वल्लभभाई पटेल का पं. नेहरु के नाम पत्र

नई दिल्ली
नवम्बर, 1950

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

अहमदाबाद से लौटने, तथा उसी दिन की कैबिनेट मीटिंग के बाद, जहां मुझे आने के 15 मिनट बाद ही जाना पड़ा, मैं बड़ी व्याकुलता से तिब्बत समस्या पर सोचता रहा हूं, तथा अब सोचा कि जल्दी ही तुमसे वह सब सांझा करूं जो मेरे दिमाग में कुनकुना रहा है।

मैंने पेकिंग में अपने राजदूत तथा अपने विदेश मंत्रालय के बीच चल रहे पत्राचार को ध्यान से पढ़ा है। उन पत्रों को भी, जो चीनी सरकार उसे पेकिंग में लिखती है। उसके आधार पर मैंने अपने राजदूत तथा चीनी सरकार से भी बड़ी सौहृदयता से पत्राचार किया है। मुझे खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि उस सब का कोई लाभ नहीं हुआ है। चीनी सरकार हमें, अपने शांतिपूर्ण उद्देश्यों के आडम्बर में उलझाती जा रही है। मेरी भावना है कि उन्होंने हमारे राजदूत को, तिब्बती समस्या को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाने के थोथे भ्रम से भर दिया है। कोई संदेह नहीं कि पत्रों का यह आदान-प्रदान जिन समय में चला होगा चीनी तिब्बत पर हमला करने ही वाले होंगे। चीन की अंतिम चाल, मेरे से पूछा जाए तो कपट और विश्वासघात जैसी ही है। ट्रैजेडी यह है कि तिब्बतियों ने अपना सारा विश्वास हमारे कहने पर ही छोड़ रखा है। हम ही उनका मार्ग दर्शन भी कर रहे हैं, और अब हम ही उन्हें चीनी कूटनीति तथा दुष्ट भावों के चक्रों में से बचा नहीं पा रहे हैं। ताजा प्राप्त सूचनाओं से ऐसा लग रहा है कि हम दलाई

लामा जी को भी वहां से नहीं निकाल पाएंगे। यदि चीनी सोचते हैं कि हमारी तिब्बत में रुचि रखने से उसे भारत-अमरीकी गुट से ख़तरा है तो यह हास्यास्पद ही है। परन्तु इससे तो मैं यही समझूंगा कि वह हमें अमेरिका के पिठ्ठू के रूप में ही देखते रहे हैं। आपके द्वारा आरम्भ किए गए सीधे सम्बन्धों के बावजूद भी ऐसा घट रहा है, तथा आपकी मार्फत संकेत मिल रहे हैं कि हम ही स्वयं को चीनियों का मित्र समझ रहे हैं जबकि चीनी ऐसे किसी भ्रम का शिकार नहीं लगते। अपनी कम्युनिस्ट मानसिकता के आधार पर जो कहती है "जो भी हमारे साथ नहीं, हमारा शत्रु हैं", यह एक महत्वपूर्ण संकेत है जिस पर हमें अभी ही ध्यान देना होगा। कुछ महीनों से सोवियत गुट से परे हो, हम ही केवल अकेले थे जिन्होंने चीन को यू. एन. ओ. की सदस्यता दिलवाने की कोशिशें कीं तथा फारमूसा के प्रश्न पर अमेरिका से कुछ न करने का विश्वास भी लिया। चीनियों की भावनाओं को निश्चित करने के लिए हमने सब कुछ किया है, उसकी सदस्यता के लिए अमेरिका, ब्रिटेन इत्यादि से किया गया पत्राचार भी उन्हें दिखाया है, इस सबके बावजूद भी चीन को हम पर भरोसा नहीं, हमें शक में रखे हैं वह तथा हमारी ओर से उसका सारा का सारा मनोविज्ञान शत्रुतापूर्ण भी है। कम से कम प्रत्यक्ष रूप से तो ऐसा ही लगता है मुझे। और मुझे शक है कि उसे विश्वास दिलाने के लिए जितना कुछ हम कर सके हैं उससे अधिक और कुछ नहीं हो सकता, उसे अपनी निष्कपट भावनाओं, मैत्रीपूर्ण उद्देश्यों को बताने के लिए इससे अधिक हम और कुछ नहीं कर सकते। पेकिंग से हमारा राजदूत, जो विद्वान और कुशल ही नहीं, दोस्ताना सम्बंधों को बढ़ाने के लिए आदर्श व्यक्ति है, वह भी चीनियों के मन को साफ करने, उन्हें विश्वास दिलाने में असफल हो गया है। उनकी ताज़ा टेलीग्राम अभद्रता का नमूना है। जिसमें हमारे उस विरोध को, कि उनकी फौजें तिब्बत में क्यों घुस रही हैं, चीनियों ने विदेशी शक्तियों के दबाव में आकर दिया गया विरोध पत्र कहा है। उनकी टैलीग्राम की भाषा साफ बताती है जवाहरलाल, कि यह किसी दोस्त की नहीं, भावी शत्रु की भाषा है।

इस सब के पटाक्षेप में, हमें इस नई स्थिति को देखना

सम्भालना होगा जिस में तिब्बत तो गायब हो ही जायेगा जिसका हमें पता था, तथा चीन का हमारे दरवाज़ों तक फैलाव भी शामिल है। इतिहास में ऐसा कभी कोई पल हमें याद नहीं जबकि हमें अपनी उधर की उत्तरपूर्वी सीमा की चिन्ता हुई हो। उत्तर में खड़े हिमालय पर्वत उधर से आने वाले किसी भी खतरे के प्रहरी से लगते रहे हमें। फिर तिब्बत हमारा दोस्त था जिसने हमें कभी किसी समस्या में नहीं डाला। 1914 में हमने उसके साथ एक समझौता किया था जिससे चीन सहमत नहीं था, तिब्बत के साथ हमने एक स्वतंत्र संधि कर उसे एक स्वतंत्र राष्ट्र तो माना ही था, बस चीन के ही हस्ताक्षर चाहिए थे हमें। चीन की अधिपत्य (सूजरेनेटी) के प्रश्न पर परिभाषा अपनी ही है, भिन्न है। सो हमें तैयार रहना चाहिए कि जल्दी ही तिब्बत के साथ जो भी समझौते इत्यादि हमने किए हैं, चीनी उन्हें एकदम नकार देगा। सो व्यापार तथा सीमा-सम्बंधी जो भी हमारे समझौते तिब्बत के साथ पिछली सदी में हुए, उन्हें तो गया ही समझो। हिमालयी क्षेत्र जो हमारी तरफ के हैं, वहां बसे मंगोल तथा चीनी वंशों के लोग कभी भी समस्या का कारण बन सकते थे सो चीन के इरादे हमारी तरफ वाले हिमालयी इलाकों तक ही नहीं हैं, वह आसाम तक भी नजर रखे हुए है। बर्मा पर भी उनकी नजर है। शताब्दियों पश्चात एक बार फिर भारत की सुरक्षा को दो मोर्चों पर ध्यान देना होगा। अभी तक हमारे सुरक्षा प्रयास पाकिस्तान से बेहतर रहने में लगे हुए थे। मेरे पूर्व विचार अनुसार अब हमें उत्तर तथा उत्तर-पूर्व में कम्युनिस्ट चीन का ख्याल रखना होगा, ऐसा कम्युनिस्ट चीन जिसके निश्चित इरादे हैं तथा जो हमारे लिए किसी तरह की दोस्ती का दम भरता नहीं लगता।

अब हमें इस सीमा से लगने वाले अन्य क्षेत्रों की राजनैतिक स्थिति का मूल्यांकन करना होगा। हमारे उत्तरी तथा उत्तरपूर्वी क्षेत्रों में नेपाल, भूटान, सिक्किम, दार्जिलिंग तथा आसाम के आदिवासी क्षेत्र पड़ते हैं, जहां से चीन आ सकता है। उधर हमारे साधन बड़े ही कमजोर व अपर्याप्त हैं, सो यह क्षेत्र "कमजोर" हैं। कोई लगातार मोर्चे भी नहीं हैं उधर, इसलिए घुसपैठ के अनेकों-अनेक रास्ते हैं। उधर की सारी चौकियों पर कोई लगातार तो बैठता नहीं, कभी जरूरत हो

नहीं थी पड़ी। वहां के बसे लोगों को, जो मंगोल हैं, भारत के साथ देश-भक्ति दिखाने का कोई कारण भी नहीं है उनके पास। कालिम्पांग तथा दार्जिलिंग क्षेत्र भी अस्थिर से हैं। तथा उनमें भी प्रो-मंगोल भावनाएं हैं। मैंने श्री आएंगर को पहले ही उन इलाकों की गुप्तचर रिपोर्टों का मूल्यांकन करने को कह दिया है।

मैं सुझाव देता हूं कि हम एक खुला विचार-विमर्श करने के लिए जल्दी ही मिलें तो बेहतर होगा ताकि ताज़ा उठी इन समस्याओं पर बातचीत कर हम कुछ ऐसे निर्णय ले सकें जो हमें लगें कि एकदम जरूरी हैं।

तुम्हारा ही
वल्लभभाई पटेल

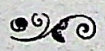

तिब्बत प्रश्न पर आचार्य कृपालानी के विचार

लोकसभा
8 मई, 1959

विषय जितना महत्वपूर्ण है समय उतना ही कम दिया गया है। मैं कोशिश करूंगा अपनी बात संक्षेप में कहने की। राष्ट्रों का एक दूसरे की आलोचना करना कोई असामान्य बात नहीं। एक दूसरे की आन्तरिक, बाहरी नीतियों की नोंकझोंक करना भी होता रहता है। कोई भी, ऐसी आलोचना को वास्तव में अपने अन्दरूनी मामलों में हस्तक्षेप नहीं समझता न कहता है। ऐसा यदि वाकई हो जाए तो जिस तरह की कठोर आलोचना चीन युगोस्लाविया की कर रहा है वह भी उस राष्ट्र के अन्दरूनी मामलों में हस्तक्षेप ही समझा जा सकता है। परन्तु कम्युनिस्टों के पास दो तरह की जुबानें होती हैं, दो तरह की विचारधारा। एक वह जो उनके अपने लिए होतो है, दूसरी दूसरों के लिए जिन्हें वह हमेशा विपक्ष ही समझते हैं।

एक राष्ट्र से जबरन व्याभिचार/रेप :

हाल ही में चीन अपनी आलोचना के प्रति बड़ा सजग हो गया है, जरा सा कुछ कहो तो तिलमिलाहट होती है उसे। मैं यकीन से कह सकता हूं जो व्यक्ति जरूरत से ज़्यादा सजग रहे, तिलमिलाए उसकी नीयत, उसका विवेक, उसकी अन्तरात्मा पर कोई बोझ बैठा हुआ है वह किसी अपराध-बोध से ग्रस्त है। हमारी कांग्रेस अध्यक्ष के बड़ी विनम्रता में कहे गए शब्दों की चीन ने खिल्ली उड़ाई, भर्त्सना की। क्यों ? सिर्फ यही कहा था न कि "तिब्बत एक देश है"। मेरे बारे,

मेरे कथनों के बारे चीन तिलमिलाए मैं समझ सकता हूं क्योंकि मुझे उनकी बुरी नीयत उनके छल कपट पर सदैव विश्वास रहा है। मैं न तो चीनीयों की बातों, वादों पर विश्वास रखता हूं, न ही उनकी खोखली विनम्रता पर। इस सदन में मुझ अकेले की आवाज़ चीन के विरोध में उठती रही हैं। 1950 में केवल मैं तथा गिने चुने अन्य मित्र थे इस सदन में जो चीन के कपट इरादों के बारे में बोलते रहे, पूर्वाभास भी था हमें। चीन को यू. एन ओ. की सदस्यता दिलवाने के लिए यदि हमने थोड़ा विलम्ब और किया होता, समझदारी, कूटनीति से काम लिया होता तो कितना अच्छा रहता। थोड़ा संयम, थोड़ा सब्र, ऐसे मामलों में ठीक रहता है, जरूर बरता जाना चाहिए। परन्तु नहीं··· अब देखिए, चीन एक ऐसा देश जो स्वयं हाल ही में आज़ाद हुआ, ने एक ऐसे राष्ट्र का गला दबा दिया है जिसके साथ हमारे पुराने दोस्ताना संबन्ध ही नहीं, हमारी सुरक्षा भी जुड़ी हुई है। थोड़ी बहुत समझ आती है बात मुझे भी कि हमारी सरकार थोड़ा इसलिए भी उदासीन है कि यह सारी ट्रेजेडी हमारे देश से दूर काफी परे घट रही है सो हमें क्या लेना, पर ज़रा सोचिए, ध्यान दीजिए, यही ट्रैजेडी जो आज तिब्बत में घटी है वही कल नेपाल में घटी तो? मुझे विश्वास है, तब चाहे हमारी पूरी तैयारी हो या नहीं हमें चीन से युद्ध में भिड़ना ही पड़ेगा। तब विदेशी विरोध के बावजूद चीन को बड़े ज़ोरों से दिलवाई यू. एन. ओ. की सदस्यता का क्या होगा? यह सब कुछ, मेरे माननीय अध्यक्ष महोदय, मैंने इस सदन को 1954 में भी कहा था। तब हमने चीन के साथ एक संधि पर हस्ताक्षर किए थे। मेरे विचार में चीन ने कम्युनिस्ट होने के बाद तिब्बत पर हमला करना आरम्भ कर दिया। उसकी दलील कि उसके पास तिब्बत पर अधिपत्य के प्राचीन अधिकार हैं, एक खोखली और धोखे से भरी दलील है और कुछ नहीं। और यदि मान भी लिया जाए कि उसके पास ऐसा कोई अधिकार है तो चीन को शर्म आनी चाहिए कि आज के आधुनिक समयों में, अपनी हाल ही की ग्रहण की गई आज़ादी के बाद जिस डैमोक्रेसी, गणतन्त्र की हमारे कम्युनिस्ट मित्र कसमें खाते हैं, उसके अन्तर्गत ऐसे घटिया, प्राचीन अधिकार भी उसे त्याग देने

चाहिएं। किसी कालोनी, किसी उपनिवेश को दबा कर अपने अधीन रखने के ज़माने तो अब लद गए। हमने ब्रिटेन वालों को ऐसा नहीं करने दिया तो पड़ोस में क्यों होने दें?

तिब्बत वैसे भी सांस्कृतिक पहलू से भारत के ज़्यादा करीब है ना कि चीन के। अन्य देश, जैसे पश्चिमी देशों की आदत रही है दूसरों पर हमले कर अपने नीचे दबाते रहें, हमें कोई लेना देना नहीं। परन्तु इस केस में हम तिब्बत से जुड़े हुए हैं, उसके पड़ोसी हैं। हमारी सारी सीमा उधर, उससे लगती है। चीन ने अपने और हमारे बीच फैला हुआ एक शांतिपूर्ण मध्यवर्ती क्षेत्र खत्म कर दिया है जिससे आने वाले बरसों में अस्थिरता, अशांति की पूरी संभावना है। सो हमें अभी चाहिए कि इसका निपटारा करें। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की नियमावली अनुसार जब एक मध्यवर्ती क्षेत्र को एक शक्तिशाली राष्ट्र तबाह कर देता है तो उस राष्ट्र को अपने पड़ोसी पर आक्रमण करने वाला घोषित कर दिया जाता है, समझा जाता है।

इस सदन को मेरे माननीय अध्यक्ष महोदय, मैंने यह सब बार-2 कहा था। अब तक यह हम भली-भांति जान चुके हैं कि चीन के नए नक्शों में अब दूसरे सीमान्त क्षेत्र जैसे नेपाल, सिक्किम इत्यादि भी दिखाए जा रहे है, जैसे वह चीनी क्षेत्र रहे हैं। इससे हमें चीन के आक्रामिक तथा फैलाववादी इरादों का आभास भी हो जाना चाहिए। मैं कतई नहीं कहता कि चीन ने तिब्बत पर हमला कर उस पर कब्ज़ा कर लिया है तो हमें उससे लड़ाई छेड़ देनी चाहिए। पर इसका यह मतलब तो नहीं कि हम चुप रहें और तिब्बत पर चीन के जबरदस्ती से थोपे गए दावे को मान लें। हमें खुल कर कहना होगा कि यह एक राष्ट्र द्वारा दूसरे असहाय राष्ट्र पर घटिया और अन्यायपूर्ण हमला है।

उसी वर्ष, मैंने फिर कहा था कि :

हमारी सीमा पार स्थित एक मध्यवर्ती राष्ट्र से उसकी स्वतन्त्रता छीन ली है, तथा हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खतरा उत्पन्न हो गया है। और जब हमने दबी आवाज़ में अपना विरोध

प्रकट किया तो क्या-क्या नहीं कहा चीन ने हमें ? कि हम पश्चिमी शक्तियों के चमचे हैं (अगर मैं ठीक शब्दों का इस्तेमाल करूं तो चीन ने कहा था "हम साम्राज्यवादियों के भगौड़े कुत्ते हैं") और 1958 में मैंने इस सदन को कहा था अध्यक्ष महोदय कि पंचशील समझौता पाप की उपज था। यह समझौता करके हमने चीन द्वारा हमारे पड़ोसी मित्र के घर ज़बरदस्ती किए जा रहे कुकृत्यों के प्रति अपनी सहमती दे डाली थी, आंखें बन्द करने की ठान ली थी। एक ऐसा पड़ोसी जो शांतिप्रिय ही नहीं था बल्कि अत्याधिक धार्मिक और शालीन भी।

तब, माननीय अध्यक्ष महोदय, इस सदन में मेरे कुछ मित्रों ने मुझे टोका था, पूछा था "उस राष्ट्र को चीन के तले रहते क्या तकलीफ है, बड़ा विकास हो रहा है वहां पर।" मेरा जवाब था, "सवाल उस देश को तकलीफ होने न होने का कतई नहीं। सवाल है कि वह राष्ट्र जैसा भी है आज़ाद रहना चाहता है, अपनी जिन्दगी खुद जीना चाहता है। हमने भी तो अंग्रेजों के नीचे बहुत विकास किया। रेलें, जहाज़, सड़कें, मोटरें इत्यादि। क्यों जाने पर मजबूर किया था उन्हें ?"

हमें फिर बताया जा रहा है कि चीन चाहे पंचशील समझौते को तोड़ दे पर हमें उसका पालन करते रहना चाहिए। माननीय महोदय, माफ कीजिए मैं नहीं समझता कि पंचशील हमारी कोई नैतिक जरुरत है। और नैतिक जरूरतों से आज के अन्तर्राष्ट्रीय युग में हम एकतरफा कभी भी जुड़े नहीं रह सकते। पंचशील कहता है कि एक दूसरे के अस्तित्व तथा स्वतन्त्रता के प्रति परस्पर सम्मान होना चाहिए। तो बताएं मुझे कि एकतरफा सम्मान करते रहने से क्या होगा ? आपने देखा जिन जिन राष्ट्रों ने पंचशील समझौते की कसमें खाई थीं वही इस समझौते की धज्जियां उड़ाते रहे हैं।

चीन भारत का मित्र कतई नहीं है। चीन ने अपनी टांग हम पर रखी हुई है। यदि हम चीन के साथ अपनी दोस्ती तथा हिन्दी-चीनी भाई-भाई के मन्त्र सुबह शाम भी अलापते रहें, मैं साफ कह दूं आपको,

तब भी वह राष्ट्र कभी भी हमसे दोस्ती नहीं निभाएगा। क्यों ? क्योंकि एक मित्र अपने ही एक मित्र के खिलाफ मंडी में जाकर शोर नहीं मचाता। कालिम्पांग (दार्जीलिंग) के बारे कितना हो-हल्ला मचाया चीन ने। क्यों ? क्या यह राजनीतिक स्तर पर हमारे साथ पत्राचार नहीं कर सकता था ? कूटनीति के रास्ते क्या सभी बन्द थे ? दूतावासों के ज़रिए क्यों नहीं उसने बातचीत की ? मुझे समझ नहीं आता कि जिस राष्ट्र की मानसिकता ही हमारी तरफ से ऐसी है, उसके साथ मित्रता की ज़रूरत हमें ही क्यों हैं ?

चीनी कभी भी हमारे निष्कपट इरादों पर विश्वास नहीं करेंगे। वह हमेशा यही समझेंगे कि हम शांतिप्रिय नहीं डरपोक हैं, क्योंकि जिस शांति की हम तूती छोड़ते हैं उसके लिए हमने कभी कुछ किया भी तो नहीं। पड़ोस के गुंडे को कभी यह नहीं सूझ सकता कि आप अपनी शराफत में चुप हैं पर हैं बलवान। वह तो हमेशा समझेगा कि आप डरपोक हैं।

जय हिन्द !

लोकसभा में विवाद और लोहिया

प्रधान मन्त्री के जवाब

भारत-चीन सीमा स्थिति
16.2.66

श्री हेम बरूआ :इस संदर्भ (चीन द्वारा कोलम्बो प्रस्तावों को न स्वीकार कर सीमा का अतिक्रमण) और इस बात को देखते हुए कि हमारे प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी देश में यह कहती घूम रही हैं कि वे चीन से बातचीत करने को तैयार हैं, क्या मैं जान सकता हूं कि चीन से बातचीत का क्या आधार है या होगा ? क्या वे अपने पिता सहित सभी दिवंगत प्रधान मन्त्रियों द्वारा हमें दिए गए आश्वासनों को खत्म करने जा रही हैं ?

प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी : नहीं, श्रीमान् ।

श्री हेम बरूआ : क्या नहीं, बात साफ कहिए । उनका देश से यह कहना कि चीन से बातचीत करने को वे तैयार हैं—क्या सही है ? यह अखबारों में छपा था । जब मैंने उनसे यह पूछा कि क्या वे बातचीत करने को तैयार हैं या अपने पिता के आश्वासनों को खत्म करने जा रही हैं, वे कहती हैं—'नहीं' । आखिर क्या 'नहीं' ? (व्यवधान)

श्री हेम बरूआ : आश्वासन खत्म करने के लिए 'नहीं' या चीन से बातचीत करने के लिए 'नहीं' ? (व्यवधान)

अध्यक्ष महोदय : आर्डर, आर्डर । इस सवाल का जवाब हो चुका है ।

श्री हरिविष्णु कामथ : यह तो एक शब्दीय जवाब है। यह कोई जवाब नहीं।

अध्यक्ष महोदय : जब सवाल है—'क्या वे आश्वासनों को खत्म करने जा रही हैं' (व्यवधान)

श्री हरिविष्णु कामथ : उन्होंने 'या' कहा, क्या वे बातचीत करने जा रही हैं या आश्वासनों को खत्म करने जा रही हैं — (व्यवधान)

अध्यक्ष महोदय : आर्डर, आर्डर। अपने पिता सहित दिवंगत प्रधान मन्त्रियों द्वारा दिए गए आश्वासनों को खत्म करने की बाबत उन्होंने कहा—'नहीं' क्या किया जा सकता है ?

(श्री लक्ष्मी सिंघवी ने प्रश्न का प्रधानमन्त्री द्वारा दिए गए जवाब पर श्री हेम बरूआ और श्री कामथ की टिप्पणियों के बाद)

श्रीमति इन्दिरा गांधी : मेरे वक्तव्यों पर श्री हेम बरूआ द्वारा दिए जाने वाले ध्यान से मैं गौरवान्वित महसूस करती हूं। तिस पर भी सारे वक्तव्य बिलकुल ठीक-ठाक नहीं छपते।

श्री हरि विष्णु कामथ : उनका खण्डन क्यों नहीं किया जाता ?

श्रीमति इन्दिरा गांधी : मैंने सवालों के जवाब में सार्वजनिक रूप से जो कहा वह यह है कि हम चीन से या किसी से बातचीत करने को तैयार हैं यदि ऐसी बात के लिए उपयुक्त हालात पैदा होते हैं।

(श्री बड़े के प्रश्न पर रक्षामन्त्री द्वारा जवाब दिए जाने पर)

डा. राममनोहर लोहिया : एक तरफ माननीय रक्षा मन्त्री का संकल्प है सीमाओं की रक्षा का, दूसरी तरफ माननीय प्रधान मन्त्री का संकल्प है कि वह चीन से कुछ हालात में बात करेंगी तो इस स्थिति में क्या माननीय प्रधान मंत्री और रक्षा मन्त्री को पता चला है कि पेकिंग चीन के सबसे बड़े विदेशी दोस्त एडगर स्नो ने बताया है कि शायद पेकिंग चीन कैलाश-मानसरोवर और पूर्ववाहिनी ब्रह्मपुत्र इलाके

को खाली करने को तैयार हो जाए और इसके बाद आगे शायद तिब्बत को स्वतन्त्र करने के लिए भी तैयार हो जाए, उससे भी यह सवाल उठता है और अगर इन दोनों को यह पता नहीं है तो क्या वह पता लगाने की कोशिश करेंगे ?

(कुछ देर तक कोई मन्त्री उत्तर देने को खड़े नहीं हुए)

अध्यक्ष महोदय : किसी मंत्री को जवाब देना चाहिए।

श्री यशवन्त राय बी. चह्वाण : इन मामलों में एडगर स्नो द्वारा दिये गए बयानों को हमने निश्चय ही पढ़ा है। लेकिन इन बयानों पर निर्भर करना और इन पर राजनैतिक कदम उठाना मुश्किल है।

डा. राममनोहर लोहिया : अब इस वक्त मैं आपकी मदद चाहूंगा। एडगर स्नो पेकिंग चीन के सबसे बड़े दोस्त हैं। माननीय मन्त्री को यह शोभा नहीं देता कि इस तरीके का जवाब दें। उनको ऐसे बयानों का अध्ययन करना चाहिए और अध्ययन करके पता लगाना चाहिए। आखिर यह सरकार किस लिए बनी हुई है। अगर उन्होंने यह बयान पढ़े बिना—यूं ही कह दिया तब तो और बात है। अब अगर पता नहीं है तो प्रधान मन्त्री से आप पुछवाएं।

अध्यक्ष महोदय : अब आप ने सुझाव दे दिया है कि अगर उन्हें पता न हो तो उसको अध्ययन करें और उसका पता लगाएं। अब और आप क्या चाहते हैं ?

डा. राममनोहर लोहिया : प्रधान मन्त्री बैठे हुए हैं। उनसे पूछ सकते हैं। अब देखिए यह पुरानी बात हो जाती है। एडगर स्नो की बात छप चुकी है और मैं ध्यान खींच चुका हूं उनका, तो इस स्थिति में अब और सब बातें हो जाती हैं तो इस पर भी उनका ध्यान जाना चाहिए, खासकर प्रधान मंत्री का।

अध्यक्ष महोदय : आपने सवाल किया और कुछ वाकयात बताए और कुछ इन्फर्मेशन दी और उनसे पूछा कि क्या उनको उस बयान

को पता है और अगर नहीं पता तो क्या उसका पता लगाने की कोशिश करेंगे तो उसका जवाब तो साफ आ जाता है। जब आपने कहा है कि ज़रूर गवर्नमेन्ट उसका पता लगाए अगर उनको पता न हो तो अब उसका मैं और क्या जवाब दूं या उनसे आपको दिलवाऊं ? उन्होंने कहा वह जो बयान है वह हमारे नोटिस में आया है मगर उनको फेस वैल्यू जितनी है उतनी देनी चाहिए। मैं इससे ज्यादा और क्या पूछ सकता हूं।

अगर उन्होंने यह कहा कि हमें इस बयान का पता नहीं है—आगे पता लगाएंगे तो मेरा सवाल यहां पर रुक जाता, लेकिन उन्होंने जैसे उसे रद्दी की टोकरी में फेंक दिया उससे कोई मतलब नहीं, इसलिए मैं आपकी मदद चाहता हूं। मन्त्रियों का इस तरह का रुख देश के बारे में बड़ा खतरनाक है। अगर उन्होंने बयान पढ़ा, तो उसकी कार्यवाही करनी चाहिए थी। आखिर एडगर स्नो कोई आदमी नहीं है।

अध्यक्ष महोदय : मैंने सुन लिया है। अब माननीय सदस्य बैठ जाएं।

श्री त्रिदिव कुमार चौधरी : माननीय प्रधानमन्त्री ने कहा कि वे चीन से बातचीत चलाने के लिए तैयार है जब ऐसी बातचीत के उपयुक्त परिस्थितियां हो जाएं। क्या मैं जान सकता हूं कि वे परिस्थितियां क्या है या वह परिस्थिति अभी भी, जिन्हें कोलम्बो प्रस्ताव कहा जाता है, उसकी सीमा में आबद्ध हैं ?

श्रीमति इन्दिरा गाँधी : महोदय, मेरा सारा मतलब यह था कि हमें साफ ही पहले भारत के हितों पर ध्यान देना पड़ेगा; हम ऐसी किसी हालत में बातचीत नहीं करेंगे जिसमें किसी भी तरह हमारी स्थिति में बिगाड़ हो।

आज़ाद तिब्बत या कैलाश-मानसरोवर

लोकसभा : 14 जुलाई 1967

डॉ. राम मनोहर लोहिया : आचार्य हिरेन मुकर्जी ने आचार्य कृपलानी को ताना मारा कि वह बीस बरस पुराने पड़ गए हैं। जब उन्होंने यह ताना मारा तो मेरे मन में आया कि उनकी दुनिया आज ही जम गई और वह समझते हैं कि इस वक्त की ही क्राँति आखिरी क्रांति है और अब आगे कोई क्राँति नहीं होने वाली है। सबसे पहले मैं आचार्य मुकर्जी को यह बताना चाहता हूं·····

एक माननीय सदस्य : आचार्य कब से बन गए ?

राममनोहर लोहिया : विद्यार्थी हिरेन कहूं ?

यह आखिरी क्रांति नहीं हुई है, अभी और अनेक क्रांतियां होने वाली हैं और दुनिया को न जाने अभी कितने मज़े देखने हैं। उनमें शायद एक मज़ा यह देखना भी है कि जो कुछ चीन ने अपने पिछले दो चार सौ बरसों में हिन्दुस्तान के कमज़ोर ज़माने में हड़पा है वह उसको उगलना पड़े। उगलना इसलिए नहीं पड़े कि हिन्दुस्तान ले ले बल्कि इसलिए कि वह आज़ाद हो जाए। क्रांतियां अभी बहुत होने वाली हैं।

एक बात मैं जरूर साफ कह देना चाहता हूं कि जो कुछ भी मैं तिब्बत के ऊपर बोलूं तो कोई ऐसा न समझे कि मैं युद्ध अथवा शांति की बात कर रहा हूं। ज़रूरी नहीं कि केवल इन्हीं दो अवस्थाओं की बात हो। मैं चीन से युद्ध नहीं चाहता। लेकिन उसके साथ-साथ जब तक चीन सुधरता नहीं तब तक मैं उससे शांति भी नहीं चाहता। इसलिए अभी हमको एक तीसरे दौर में से गुजरना है जब हमको अपना

मन बनाना है, हमको अपनी नीति बनानी है, उसको दुनिया में फैलाना है, अपनी संकल्प शक्ति को मज़बूत करना है। तिब्बत के मामले में संकल्प शक्ति सिर्फ एक ही हो सकती है कि तिब्बत पहले से आज़ाद रहा है और आगे भी होना चाहिए।

मैं कभी भी मैकमोहन रेखा को अपनी स्वीकृति नहीं दे सकता। मैंने कभी दी भी नहीं और न देना चाहता हूं। इस सदन में अक्सर कहा गया है कि चीन मैकमोहन रेखा को नहीं मानता और यह सरकार मैकमोहन रेखा की माला को हमेशा जपा करती है। एक बात मैं साफ कह देना चाहता हूं कि भारत और आज़ाद तिब्बत की रेखा ही मैकमोहन रेखा हो सकती है, लेकिन चीन के साथ मैकमोहन रेखा कभी नहीं हो सकती है। अगर तिब्बत कभी आज़ाद हुआ तो मैकमोहन रेखा हमारी सीमा हो सकती है।

तिब्बत के मामले में अगर कहीं किसी को डर हो कि हम अगर तिब्बत का मामला उठाएंगे तो चीनी लोग कशमीर का मामला उठा देंगे··· !

श्री मधुलिमये : उठा चुके हैं लोग।

डॉ. राम मनोहर लोहिया : यहां के चीनी उठा चुके हैं तो यहां के अभी उन रूसियों को भी उठाना होगा जिन्हें पता नहीं कि उनके स्तालिन ने कब क्या कहा था और अब रूस आगे क्या कहने वाला है। जो उठाने वाले हैं उनसे मैं कहूंगा कि यह चीन और तिब्बत का मामला है भारत और कशमीर का नहीं, भारत कशमीर के मामले को अगर चीन की उपमा देना चाहते हो तो चीन और सिक्यांग का मामला है, लेकिन चीन और तिब्बत का मामला इंग्लिस्तान और मालटा का मामला भी है·····

आज दलाई लामा हमारे देश में हैं। मैं इस मौके पर कोई कड़ा शब्द नहीं कहना चाहूंगा, क्योंकि आज मैं छागला साहब को चिढ़ाना नहीं चाहता हूं। वैसे मैं आज यहां आता भी नहीं, क्योंकि मेरा शरीर अच्छा नहीं है। कल-परसों छब्बीस-सत्ताईस बरस का एक तिब्बती

लड़का, लोदी ग्याल्तसेन, मेरे पास आया। वह एक तिब्बती अखबार का सम्पादक है। वह दलाई लामा जी से मिलने के लिए जा रहा था। उसने बड़ी उत्सुकता से मुझसे खाली एक सवाल पूछा, "क्या तिब्बत कभी आज़ाद होगा?" उत्सुकता और दिल में कसक! आज जब मैं श्री रणधीर सिंह को सुन रहा था, तो मैंने सोचा कि कहीं मेरे दिल में ताकत होती, तो मैं उसको ताकत के साथ जवाब देता। मैं भी कभी पच्चीस-छब्बीस बरस का था। मैं भी कभी अपने देश की आज़ादी के लिए कसक के साथ बोला करता था। लेकिन मुझमें ताकत ज़्यादा थी, क्योंकि आखिर हम तीस-पैंतीस करोड़ थे। मैं कभी यह नहीं पूछा करता था कि क्या हिन्दुस्तान आज़ाद होगा या नहीं। लेकिन जब लोदी ग्याल्तसेन ने मुझे पूछा कि क्या कभी तिब्बत आज़ाद होगा, तो थोड़ी देर के लिए मुझे उदास होना पड़ा। उदास होकर मैंने खाली यह कहा कि अगर दुनिया को तरक्की करना है और आज़ादी के रास्ते जाना है, तो मुझे ऐसा लगता है कि वह आज़ाद होगा।

मैंने उसको कहा कि यह बात अलग है कि आज चीनी यह कोशिश कर रहे हैं कि तिब्बती जाति के साथ खून का मिश्रण करके उनका नामो-निशाँ तक मिटा दें, लेकिन फिर भी उनकी हज़ार कोशिशों के बावजूद एक ऐसी नई जाति पैदा होगी जो चीनी नहीं होगी और मुझे ऐसा लगता है कि तिब्बत की वही जनता उठेगी और आज़ाद होगी। जैसे मैं खुद देखकर आया हूं कि मेक्सिको में बसने वाले कोई स्पेनी नहीं हैं, वे दिमागी तौर पर भी स्पेन के अधीन नहीं हैं और कई बातों में स्पेन की निन्दा करते हैं।

उस वक्त मैं यह बात उस लड़के को बहुत ताकत के साथ नहीं कह पाया—आज भी नहीं कह पा रहा हूं। लेकिन एक बात मैं साफ कर देना चाहता हूं। जो हिन्दुस्तान पिछले एक हज़ार बरस से कमजोर रहा है, जिसकी सीमाएं नष्ट होती रही हैं, वह हिन्दुस्तान अगर कभी मज़बूत हुआ—आज नहीं, तो अगले दस, पन्द्रह, बीस, पचास बरस में—तो उसकी सीमाएं कौन-सी होंगी? पिछले हज़ार बरस से जो सीमाएं बताई जाती हैं? अंग्रेज़ी ज़माने की सीमाएं?

अफगान ज़माने की सीमाएं ? जब मैं अफगान कह रहा हूं, तो मेरा मतलब पठान नहीं, बल्कि नादिरशाह वगैरह से है या मुगल ज़माने की सीमाएं ? ये सब ऐसे जमाने की सीमाएं हैं, जब भारत कमजोर रहा है। लेकिन कभी ऐसा वक्त भी आ सकता है, जब भारत मज़बूत हो और उस वक्त के लिए मैं आपको प्राचीन भारत की आखिरी राजधानी, कन्नौज के अखिरी कवि राज-राजेश्वर की "चक्रवर्ती राज्य" की यह परिभाषा सुना देना चाहता हूं : बिन्दसार से लेकर कन्याकुमारी तक जो राज्य होता है वह चक्रवर्ती राज्य होता है और बिन्दसार का मतलब है मानसरोवर।

हिन्दुस्तान की ये सीमाएं जिस सन्धि के द्वारा निर्धारित की गई है, हमने उसी सन्धि को अपने सामने रखना है और उसी को स्वीकार करना है, उन सन्धियों को नहीं, जिनका ज़िक्र कुछ लोग इधर-उधर की दो-चार किताबें पढ़कर किया करते हैं। शक्तिशाली हिन्दुस्तान की सन्धि के अनुसार इस देश की सीमाएं बिन्दसार से लेकर कन्याकुमारी तक हैं और बिन्दसार का मतलब है कैलाश मानसरोवर, पूर्ववाहिनी ब्रह्मपुत्र। इस सम्बन्ध में मैं इस वक्त मन्सर वगैरह के वे सब उदाहरण नहीं देना चाहता हूं, जो भारत या कशमीर के कई अफसरों ने मुझे बताए हैं क्योंकि इस में वक्त लग जाएगा। लेकिन शक्तिशाली भारत की उत्तर में जो सीमा रही है—शायद उस वक़्त चीन रहा हो, परन्तु तिब्बत था—वह कैलाश मानसरोवर तक थी।

अगर मन्त्री महोदय अन्तर्राष्ट्रीयता का रुख लेते हैं तब तिब्बत को सम्पूर्ण आज़ाद होना चाहिए। अगर वह राष्ट्रीयता का पहलू लेते हैं, तो मैं बीच की बात देना चाहता हूं और वह यह है कि चीन और भारत की सीमा कैलाश और मानसरोवर और पूर्ववाहिनी ब्रह्मपुत्र ही हो सकती हैं। आज से कोई भी मैकमोहन रेखा का नाम न ले। यह केवल धार्मिक स्थान की नहीं है, बल्कि यह राजकीय अधिकारों की बात है। इसलिए अगर मन्त्री महोदय कभी संयुक्त राष्ट्र में जाएं, तो वह वहां माननीय अधिकारों की बात न करें। फिजूल है चीनियों से मानवीय अधिकारों की बात करना। चीनी क्या तिब्बत में मानवीय अधिकार देंगे, जो अपने घर के अन्दर ही मानवीय अधिकारों का यह

हाल बनाये हुए हैं कि यही पता नहीं है कि वहां का राष्ट्रपति कौन है. ल्यू-शाओ-ची- है या और कोई है। वह बेचारा पीकिंग में है और उसकी बीवी शंघाई में है ? क्या मन्त्री महोदय ऐसे लोगों से मानवीय अधिकारों की बात करेंगे ? नहीं। मैं छागला साहब से यह अनुरोध करूंगा कि वह संयुक्त राष्ट्र में जाकर कभी भी मानवीय अधिकारों की बात न करें।

वह वहां पर जाकर बात करें अन्तर्राष्ट्रीयता के आधार पर तिब्बत की सम्पूर्ण आज़ादी की, राजकीय आज़ादी की। और अगर वह राष्ट्रीय आधार लेना चाहते हों, तो मैं एक बीच की बात निकालना चाहता हूं। शायद भारत और चीन की सीमा फिलहाल, वक्ती तौर पर यह पूर्वावाहिनी ब्रह्मपुत्र रहे। मैं सलाह देना चाहूंगा कि तब जो दलाई लामा जो आज करीब-करीब शरण में तो नहीं है, जो यहां गाड से दिये गए हैं, उनको इस नेपाल और मानसरोवर के बीच के इलाके में एक स्वतन्त्र राजा— ऐसा नहीं कि वह बिल्कुल एक निरंकुश राजा बनें, बल्कि एक संवैधानिक राजा के रूप में बिठाया जा सकता है।

मेरे पास एक नक्शा है, जो करीब दस हजार भारतीय घरों के अन्दर पहुंच चुका है। उपाध्यक्ष महोदय, मैं आपको इसकी एक प्रति दूंगा और अगर आपकी इज़ाजत हो, तो आप इस नक्शे को सदन के पटल पर रख दीजिएगा। इस नक्शे का शीर्ष है "या आज़ाद तिब्बत या कैलाश मानसरोवर"—या तो अन्तर्राष्ट्रीयता के हिसाब से आज़ाद तिब्बत और या राष्ट्रीयता के हिसाब से कैलाश मानसरोवर। मैं इस नक्शे से एक वाक्य आपको पढ़कर सुनाना चाहता हूं।

"तिब्बत पूरा आजाद है और रहना चाहिए। तिब्बत चीन का हिस्सा नहीं है। एक, भाषा, दूसरे, लिखावट, तीसरे, जमीन का ढलाव, चौथे, रहन-सहन, पांचवे, धर्म, छठे इतिहास, सातवें, लोक-इच्छा के कारण तिब्बत और हिन्दुस्तान भाई हैं। या तिब्बत आज़ाद हो, नहीं तो कैलाश मानसरोवर हिन्दुस्तान में मिलें।"

जमीन के ढलाव के बारे में मैकमोहन रेखा की बातें कही गई हैं, वे बिलकुल मिथ्या हैं, क्योंकि ज़मीन का ढलाव सिन्धु नदी, गंगा

नदी और ब्रह्मपुत्र नदी से मालूम होता है। ज़मीन का ढलाव कैलाश मानसरोवर है।

और लोक-इच्छा तो बिलकुल साफ है। तिब्बत का वह छब्बीस-सत्ताईस बरस का लड़का, लोदी ग्याल्तसेन, जो कल परसों मेरे पास आया, लोक-इच्छा लेकर आया था: कसक और उत्सुकता ले कर आया था। इस सदन को उस जैसे लड़के के दिल को तसल्ली देने के लिए कोई न कोई काम करना चाहिए। मन्त्री महोदय यह याद रखें कि जब मैं छब्बीस का था, तो मेरे पीछे ताकत थी, तीस-पंतीस करोड़ की ताकत थी, लेकिन उस बेचारे के पीछे तो खाली पचास लाख हैं। मन्त्री महोदय से मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि वह जवाब देते वक़्त जरा उस लड़के को याद रखें।

लोकसभा पेपर्ज

चीन के साथ सम्बन्ध

लोकसभा, 19 जून, 1967

डा. राममनोहर लोहिया : अध्यक्ष महोदय, आज मैं कुछ चिन्ता से बोल रहा हूं क्योंकि चीन ने अपना हाइड्रोजन बम फोड़ लिया है और अगर वह चाहें, तो वह एक से हमारी राजधानी और उसके सभी निवासियों को बिलकुल भस्म कर सकता है। अगर उधर, इधर और अपने देश में इतनी हिम्मत होती, तो किसी भी बात की चिन्ता नहीं होती और कभी का, चीन से सम्बन्ध तोड़ना तो दूर रहा, अब तक हम लोग न जाने कितने आगे बढ़ गए होते।

मुझे हैरत होती है, जब मैं अपने देश के किसी मन्त्री को यह कहते हुए सुनता हूं कि न सिर्फ हिन्दुस्तान में कूटनीतिज्ञों के साथ, बल्कि इंग्लिस्तान और रूस के कूटनीतिज्ञों के साथ भी बरताव, या उसके जैसे बरताव हुआ है। अगर इंग्लिस्तान की डोवर की पहाड़ियों को एक छोटा सा हिस्सा भी चीन ने लिया होता, तो अब तक क्या हो गया होता ? अगर रूस के साइबेरिया मैदान का एक छोटा सा भी हिस्सा चीन ने लिया होता, तो क्या होता ? लेकिन फिर भी जब इस देश का एक मन्त्री, चाहे वह विदेश मंत्री हो या प्रधानमंत्री, ऐसी बातें बोलता है,— आप यह न समझें कि मैं बिना सोचे बोल रहा हूं,— तो मुझे यह कहना पड़ता है कि इस देश की सरकार को अपनी ज़मीन के बारे में किसी तरह की लज्जा नहीं रह गई है। न जाने हम किस भविष्य में जा रहे हैं।

आज यह समय आ गया है, जबकि इन सभी बातों पर गम्भीरता के साथ विचार किया जाये, वरना नतीजा क्या होगा ? अभी इस सदन

को यह नहीं बताया गया है कि चीन ने खुद एक नोट सरकार को भेजा है कि चीन के दूतावास के ऊपर जो हमला हुआ था, जल्दी से जल्दी उसका संतोषजनक उत्तर दिया जाये, वर्ना चीन कार्यवाही करेगा। इस संसद को अभी यह खबर नहीं दी गई है। मैं यह खबर दे रहा हूं कि चीन उल्टे सरकार को एक नोट भेज चुका है। इस प्रकार के नोट परस्पर आते-जाते रहेंगे। नतीजा होगा कि चीन कोई कार्यवाही करेगा, तब यह सरकार उल्टी कार्यवाही करेगी। जब चीन इस देश से राजनयिक सम्बन्ध तोड़ेगा। आखिर ये सब बातें एक दूसरे के साथ जुड़ी हुई हैं।

आप जानते हैं कि जब इस सरकार ने संयुक्त राष्ट्र में चीन के प्रवेश के सम्बन्ध में कार्यवाही की—1962 के बाद कार्यवाही की ! अपनी ज़मीन छिनने के बाद कार्यवाही की !,– तब मैंने इसी लोकसभा में इसकी उपमा उस लड़के से दी थी जो अपनी मां की शादी उसके बलात्कारी के साथ करा देना चाहता है। इस तरह की सरकार को ले कर आप कहां तक जा सकेंगे ? अब समय आ गया है, जब इन सब बातों पर गम्भीरता के साथ विचार करके एक लगातार फैसला किया जाये।

जब चीन फिर से इस देश पर हमला कर देगा और एक - तिहाई हिन्दुस्तान खत्म हो जाएगा, क्या तब यह सरकार चेतेगी ? अब वह समय आ गया है, जब अमरीका या रूस या कोई भी देश हमारी मदद करने के लिए आने वाला नहीं है, जब तक कि एक-तिहाई हिन्दुस्तान चीन के कब्जे में नहीं चला जाता। यह बात अरब-इसराईल युद्ध ने बिल्कुल साबित कर दी है। तो क्या सरकार इन छोटी-मोटी बातों के झगड़े में फंसी रहेगी कि जो चीन करेगा, उसी का जवाब दे देंगे, वह थप्पड़ मारेगा, तो ये भी थप्पड़ मार देंगे, वह गाली देगा, तो ये भी गाली देंगे, अगर वह किसी तरह से प्रेम करेगा, तो ये भी कर देंगे ? क्या यह सरकार उसके अलावा कभी कुछ करेगी ? अब गम्भीरता के साथ हमें कुछ करना चाहिए। हमें थप्पड़ नहीं मारना है, गाली नहीं देनी है, हमें शांति के साथ रहना है। हमने उनके साथ सब सम्बन्ध तोड़ डालना है, लेकिन अगर युद्ध करना पड़ता है, तो फिर ऐसा संकल्प बनाकर युद्ध करना है कि चाहे हम खत्म हो जाएं, लेकिन अपनी ज़मीन

के एक-एक इंच को बचाकर रखेंगे।

आज कोई ऐसा-वैसा मौका नहीं हैं। लेकिन जिस तरह आप इस सवाल को छेड़ रहे हैं और जिस तरह मन्त्री महोदय ने जवाब देना शुरू किया है, उससे ऐसा मालूम होता है, जैसे बच्चों की कोई गोली या गुल्ली डंडे की लड़ाई हो रही हो। वह यह लड़ाई नहीं है। मैं चाहता हूं कि चीनी राजनयिकों के खिलाफ ज़रा भी कोई कार्यवाही न हो। इस बात की कोई ज़रुरत नहीं हैं। हमें शांति और गम्भीरता के साथ अपने कदम तय कर लेनें चाहिए कि अब चीन से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है, उसके बाद हम शांति से रहें। अगर हम आज वाले रिश्ते को ही लगातार और पांच-दस बरस चलाते रहें, तो अच्छा है। यदि युद्ध होता है, तो उसका सामना भी संकल्प ले साथ करें, चाहे उसमें हमें कितनी भी तकलीफें उठानी पड़ें। □

एडगर स्नो और कैलाश-मानसरोवर

लोकसभा : 16 फरवरी, 1966

डॉ० राममनोहर लोहिया : एक तरफ माननीय रक्षा मन्त्री का संकल्प है सीमाओं की रक्षा का, दूसरी तरफ माननीय प्रधान मन्त्री का संकल्प है कि वह चीन से कुछ हालातों में बात करेंगी तो इस स्थिती में क्या माननीय प्रधान मन्त्री और रक्षा मन्त्री को पता चला है कि पेकिंग चीन के सबसे बड़े विदेशी दोस्त एडगर स्नो ने बताया हैं कि शायद पेकिंग चीन कैलाश-मानसरोवर और पूर्ववाहिनी ब्रह्मपुत्र के इलाके को खाली करने को तैयार हो जाए और इसके बाद आगे शायद तिब्बत को स्वतंत्र करने के लिए भी तैयार हो जाये, उससे भी यह सवाल उठता है और अगर इन दोनों को यह बात पता नहीं है तो क्या वह पता लगाने की कोशिश करेंगे ?

श्री चह्वाण : निश्चय ही इन मामलों पर श्री एडगर स्नो का बयान हमने पढ़ा है। लेकिन ये ब्यान जैसे है वैसे ही लेना होगा। इन ब्यानों पर निर्भर होकर कोई राजनीतिक कदम उठाना मुश्किल है।

श्री विजयलक्ष्मी पंडित : श्रीमान्, जिस लेख का माननीय सदस्य ने जिक्र किया है वह दो साल पुराना है। उसके लिखे जाने के बाद मुझे श्री एडगर स्नो से कम-से-कम चार बार मिलने का मौका मिला—तीन का मुझे यकीन है, शायद चार बार—और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि उस लेख में जो लिखा गया था, आज भी श्री एडगर स्नो की वही राय है।

डॉ राममनोहर लोहिया : अब वह मामला बढ़ गया है। अध्यक्ष महोदय,

अध्यक्ष महोदय : अब मैं आगे नहीं जा सकता हूं ।

डॉ. राममनोहर लोहिया : अध्यक्ष महोदय, मेरी बात सुन लीजिए ।

अध्यक्ष महोदय : मैंने श्री चौधरी को बुलाया है ।

23 फरवरी, 1966

डॉ राममनोहर लोहिया : इसी तरह से विदेशी मामलों में हम लोगों ने देखा कि किस तरह से सरकार के मन्त्री कान से बहरे हैं या नहीं, मैं नहीं जानता लेकिन दिमागी बहरे जरूर हैं । कल मैंने यह ज़िक्र किया था कि कैलाश मानसरोवर पूर्ववाहिनी ब्रह्मपुत्र के बारे में जो कि कोलम्बो प्रस्ताव में बीस हज़ार वर्ग मील ज्यादा भारत को दिलाते हैं और इसका जिक्र आया भी है, लेकिन माननीय रक्षा मन्त्री ने बिना उस बात को समझे हुए दिमागी बहरेपन से कह दिया कि हां मैंने भी यह बात पढ़ी थी, लेकिन महत्व नहीं दिया ।

24 फरवरी, 1966

श्री किशन पटनायक : घाना के प्रेजीडेण्ट एन्क्रूमा साहब यहां से चीन भी जा रहे हैं और एन्क्रूमा साहब से बातचीत के मुतल्लिक सदन में पेकिंग के खास दोस्त एडगर स्नो के सुझाव के बारे में आलोचना की गई थी । क्या उस सम्बन्ध में तथा तिब्बत की स्थिति और कोलम्बो सुझावों के बारे में कोई नया प्रस्ताव या नया सुझाव उनके कानों में हमारे प्रधान मन्त्री ने डाला ?

श्रीमती इन्दिरा गांधी : जी नहीं ।

डॉ राममनोहर लोहिया : क्या प्रधान मन्त्री जी ने चीन के सम्बन्ध मे कोलम्बो प्रस्तावों या उनसे भी कम किसी आधार पर घाना के राष्ट्रपति से बात की, जबकि विशेष स्थिति में यह पता चला है कि शायद चीन कैलाश-मानसरोवर जो कोलम्बो प्रस्तावों से बीस हज़ार वर्ग मील ज्यादा होता है, किन्हीं हालतों में सोचने को तैयार हो जाए ?

श्रीमती इन्दिरा गांधी : मैंने उनसे किसी आधार पर ही बात की है। केवल उनको बता दिया उस बात को जो सदन भी जानता है और चह्वाण साहब सदन को बता भी चुके हैं कि हमारी सीमा पर चीन क्या कर रहा है।

1 मार्च 1966

डॉ राममनोहर लोहिया : अध्यक्ष महोदय, उस दिन जब मैंने कैलाश मानसरोवर और पूर्ववाहिनी ब्रह्मपुत्र की सीमा का ज़िक्र किया था तो माननीय विजयलक्ष्मी पंडित ने उसको कोई और सीमा समझ लिया था और मैं इतना बता दूं कि अभी जो कोलम्बो प्रस्ताव भारत की तरफ से या भारत के मित्र राष्ट्रों की तरफ से चीन के सामने रखा गया। उनसे यह कैलाश मानसरोवर वाली सीमा करीब 20, 25 हज़ार वर्ग मील ज्यादा भारत को दिलाती है तो इसके सम्बन्ध में मेरे पास इत्तिला आई थी श्री जॉर्ज फर्नांडीज़ के जरिए जो कोई 6, 7 महीने पहले श्री एडगर स्नो से मिले थे और जिसके सम्बन्ध में यहां रोज़ाना "लुक" नाम के एक दैनिक अखबार में खबर निकली थी, एक खबर छपी थी। एक लेख भी निकला था बाद में कि ऐसी बात पर चीन की सरकार कुछ हालतों में सोचने के लिए तैयार है। यह चीज़ बहुत गज़ब की है, 25 हज़ार वर्ग मील ज्यादा जमीन कोलम्बो प्रस्ताव की अपेक्षा, लेकिन उसके ऊपर जब कभी मैंने सवाल पूछा तो एक लापरवाही का जवाब आया। मुझे माननीय विजयलक्ष्मी पंडित को पहले तो धन्यवाद देना है कि उनकी गलती से यह सवाल लोकसभा के सामने कुछ ज्यादा प्रखर रूप में आ गया है। उन्होंने जब यह कहा कि उन्होंने यह लेख दो वर्ष पहले कहीं पढ़ा था एडगर स्नो का, तो मैं समझता हूं कि कहीं कोई भूल हो गई, कोई और लेख उन्होंने पढ़ा था। कैलाश मानसरोवर वाली सीमा का उससे कोई सम्बन्ध नहीं था और अगर वह यहां पर अपनी सफाई दे देती हैं तो उसके बाद मेरी आपसे प्रार्थना होगी कि जो काम श्रीमती पंडित कर रही हैं वह काम सरकार को भी करना चाहिए।

और अपनी भूल को स्वीकार करके इसमें कुछ तहकीकात करनी चाहिए। मान लीजिए एडगर स्नो ने……

अध्यक्ष महोदय : माननीय सदस्य ने अपनी बात कह दी है ?

राम मनोहर लोहिया : मैं एक मिनट में खत्म किए देता हूं।

क्योंकि यह सिर्फ चीन का मामला नहीं है—यह भारत का अपनी ताकत का मामला है। मैं सिर्फ इतना आपसे कह दूं कि आज से कोई हजार वर्ष पहले जब भारत शक्तिशाली था, तब भारत की सीमाएं या तो रहती थीं स्वतन्त्र तिब्बत पर, या रहती थीं कैलाश, मानसरोवर और पूर्ववाहिनी ब्रह्मपुत्र पर। यदि वह केवल हमारी कमजोरी की निशानी है इस बात को भारत सरकार समझे तो अच्छा है।

श्री विजयलक्ष्मी पंडित : जब पिछले महीने की सोलह तरीख को लोहिया ने एडगर स्नो के लेख का जिक्र किया. तो जहां तक मुझे याद पड़ता है, उन्होंने यह भी कहा कि वह 'लुक' नाम की पत्रिका में निकला था। वे हिन्दी में बोल रहे थे दो साल पहले मैंने एडगर स्नो का एक लेख पढ़ा था, जो अमरीकी पत्रिका 'लुक' में निकला था। यह लेख बड़ा महत्वपूर्ण था। एडगर स्नो तभी चीन से लौटे थे, और मेरा ख्याल है इस लेख का—पूरी बात मुझे याद नहीं, हमारी सीमाओं पर चीनी आक्रमण और इसी तरह की कुछ बातों से सम्बन्ध था। इसी तरह मैंने हस्तक्षेप किया था और कहा था कि उस लेख के निकलने के बाद मैं श्री एडगर स्नो से मिली थी, और मैंने पाया था कि उसमें व्यक्त की गई राय उन्होंने कुछ बदल ली थी। जब लोहिया ने मेरा ध्यान इस ओर खींचा कि वे बिलकुल दूसरी चीज की चर्चा कर रहे थे और यह न जानते हुए कि 'लुक' नाम का कोई शाम का अखबार निकलता है, मैं गलती से उसकी जगह अमरीकी पत्रिका 'लुक' समझ बैठी थी, तो मैंने महसूस किया कि इस गलती पर खेद प्रकट करना उचित होगा।

उसके बाद मैंने वे प्रस्ताव देखे जिनका जिक्र लोहिया ने किया। मैं नहीं कह सकती कि कोलम्बो प्रस्ताव मुझे पूरा याद है, लेकिन मेरे मन पर निश्चत ही यह प्रभाव पड़ा है कि दोनों की तुलना करने पर इसमें कुछ ऐसी चीज़ हैं जो कोलम्बो प्रस्तावों से आगे जाती है। अगर इसमें कोई गलती हो तो दुरुस्त की जा सकती है। लेकिन मैं कहना चाहती हूं कि मुझे अफसोस है कि मैंने यह गलती की जिससे सदन के माननीय सदस्यों को कुछ असुविधा हुई, और लोहिया को कुछ दुःख हुआ।

तिब्बत के बारे डा. अम्बेडकर जी की चेतावनी

"हमारे प्रधानमंत्री उस पंचशील पर जिसे माओ ने ग्रहण किया है और जो तिब्बत पर अनाक्रमण संधि की एक धारा है पर निर्भर करते चले आ रहे हैं। मुझे आश्चर्य है कि प्रधानमंत्री इस "पंचशील" को गम्भीरता पूर्वक ले रहे हैं? महोदय आप जानते हैं कि "पंचशील" बौद्ध धर्म का एक महत्वपूर्ण अंग है। यदि श्री माओ को "पंचशील" में कुछ भी आस्था होती तो वे अपने देश में बौद्धों के साथ दूसरी तरह का बर्ताव करते। राजनीति में "पंचशील" का कोई स्थान नहीं है। उनमें सत्य यह है कि नैतिकता परिवर्तनशील है। नैतिकता नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। आज की नैतिकता के अनुसार आप वचन का पालन कर सकते हैं, और उतने ही औचित्य के अनुसार आप कल अपने वचन का उल्लंघन भी कर सकते हैं क्योंकि कल की नैतिकता भिन्न प्रकार की होगी···मेरा विश्वास है कि जब स्थिति पक जायेगी तो हमारे प्रधानमंत्री को इसका ज्ञान हो जायेगा कि मेरा कहना कितना ठीक है।" सीटो से सम्बन्ध में बाबा साहब ने कहा, "सीटो का काम स्वतंत्र देशों के विरुद्ध आक्रमणों को रोकना है। मैं सोचता हूं कि क्या प्रधानमंत्री इस सिद्धांत को भी नहीं मानेंगे कि दुनिया का जो हिस्सा आकस्मिक कारणों से अब भी स्वतंत्र है, उसे स्वतंत्र रहने दिया जाय? उस पर कोई भी देश आक्रमण न करे। और क्या भारत के सम्मुख आक्रमण का खतरा नहीं है? मैं सोचता हूं कि भारत पर कभी भी आक्रमण हो सकता है। भारत किस प्रकार पाकिस्तान और दूसरे मुस्लिम देशों से घिर गया। मैं नहीं जानता कि क्या होने को है? उधर चीन को ल्हासा (तिब्बत की राजधानी) पर अधिकार लेने देकर प्रधानमन्त्री ने एक प्रकार से चीनी लोगों को अपनी सेनाएं भारत की सीमा पर ले आने में पूरी सहायता पहुंचाई है। कोई भी विजेता, यदि काश्मीर पर अधिकार कर लेता है तो वह सीधा पठानकोट पहुंच सकता है, और मैं जानता हूं शायद वह प्रधानमंत्री के भवन तक भी पहुंच सकता है"

[1954, राज्य सभा दस्तावेज]

प्रारम्भिक इतिहास

तिब्बती राष्ट्र के लिखित इतिहास की शुरुआत 629 ई० में राजा सोंङ सन गम्पो के शासन काल से मानी जाती है जब तिब्बत एशिया की महान सैन्य शक्तियों में से एक बना। राजा सोङ सन गम्पो ने तिब्बत की सीमाओं पर स्थित अनेक राज्यों को विजय करके वशीभूत किया। उसने पश्चिमी चीन पर आक्रमण किया तथा चीनी और नेपाली शासकों को शान्ति सन्धि के लिए दो राजकुमारियों का उसके साथ विवाह करने पर बाध्य किया।

सातवीं से नवीं शताब्दी तक तिब्बत और चीन में प्रायः युद्ध होते रहे। दूसरी शताब्दी के उत्तरार्ध में तिब्बत की सेनाओं द्वारा पश्चिमी चीन पर प्राप्त की गई विजय का विषद वर्णन पोताला के नीचे स्थित शिला-स्तम्भ पर अंकित है। एक बार तो चीन की राजधानी को भी हस्तगत कर लिया गया; चीनी नरेश को पलायन करना पड़ा और तिब्बत ने एक नये नरेश को सिंहासन पर बैठा दिया।

इस अवधि में तिब्बत-चीन सम्बन्ध समानता तथा पारस्परिकता पर आधारित थे। 821 ई० में हुई शान्ति सन्धि जो कि ल्हासा स्थित केन्द्रीय मन्दिर के सामने एक शिला-स्तम्भ पर अंकित है इस तथ्य की गवाह है। इस सन्धि की शर्तों के अनुसार चीन तथा तिब्बत के नरेशों ने यह प्रण किया कि कोई भी एक दूसरे की निर्धारित सीमाओं का उल्लंघन नहीं करेगा। यह तथ्य कि उस समय तिब्बत एक स्वतन्त्र राष्ट्र था इस सन्धि तथा अन्य कई ऐतिहासिक स्रोतों से प्रमाणित हो जाता है तथा चीन वाले भी इस तथ्य पर आपत्ति नहीं करते।

मंगोल प्रभाव

चीन सहित एशिया के अधिकांश देशों तथा यूरोप के एक बड़े भाग की तरह तिब्बत भी तेरहवीं शताब्दी में मंगोल प्रभुत्व के नीचे आ गया। चीन पर विजय प्राप्त करने तथा युआन वंश को राज्य सिंहासन

पर प्रतिष्ठित करने के पूर्व मंगोल खानों का तिब्बत पर प्रभाव स्थापित हो गया था। कुबलाई खान ने तिब्बत का बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया और उसने साक्य मठ के प्रमुख लामा को सर्वोच्च धर्म प्रवक्ता तथा अपने व्यक्तिगत गुरु के रुप में मान्यता प्रदान की। उसने उन्हें तिब्बत के राज्याध्यक्ष पद पर भी स्थापित किया। लेकिन साक्य लामाओं का स्वामित्व अधिक चिरस्थायी न रहा और अन्ततः तिब्बत के द्वितीय राजतन्त्र का श्री-गणेश हुआ।

चौदहवीं से बीसवीं शती तक तिब्बत के विदेश सम्बन्ध

स्थानीय चीनी मिंग वंश (1368-1644), जो मंगोल युआन वंश का उत्तराधिकारी बना, के तिब्बत के साथ बहुत नगण्य सम्बन्ध थे तथा अधिकार बिल्कुल नहीं। दूसरी ओर, मांचू लोग जिन्होंने चीन को विजित किया और सतरहवीं शताब्दी में चिंग वंश की नींव डाली, ने मंगोल लोगों की भान्ति तिब्बत का बौद्ध धर्म ग्रहण किया और तिब्बत वासियों के साथ सुदृढ़ सम्बन्धों को विकसित किया। उस समय तक दलाई लामा न केवल बौद्ध धर्म के सर्वोच्च अगुआ बल्कि राज्याध्यक्ष भी बन गये थे। उनको एशिया भर में अत्यन्त आदर का स्थान प्राप्त था तथा मांचू नरेशों का उनके प्रति वही दृष्टिकोण था जो कि ईसाई नरेशों का पोप के प्रति था। दोनों व्यक्तियों के मध्य बौद्ध गुरु तथा संरक्षक का पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित हो चुका था। दलाई लामा आध्यात्मिक गुरु तथा पथ प्रदर्शक थे तो मांचू नरेश उनका एक साधारण पुजारी पक्षधर तथा संरक्षक। आने वाले वर्षों में इन्हीं सम्बन्धों के आधार पर मांचू लोगों ने दलाई लामा तथा तिब्बत के लोगों की सहायता की। तिब्बती मांचू सम्बंधों के फलस्वरुप तिब्बत कदापि चीन का अधिनस्थ राज्य नहीं बना।

1652 में चिंग प्रथम नरेश के निमंत्रण पर पंचम दलाई लामा पीकिंग पधारे। तिब्बत के राज्याध्यक्ष तथा समस्त मध्य एशियाई बौद्धों के नेता की अगवानी के लिए चीन नरेश अपनी राजधानी से चार दिन की

यात्रा करके लिवाने आया। चीनी नरेश ने दलाई लामा के साथ हर प्रकार से वैसा ही व्यवहार किया जैसा कि एक स्वतन्त्र राज्याध्यक्ष से किया जाता है।

1720 में सप्तम दलाई लामा को, जो कि अभी बच्चे ही थे, कुमबम मठ से पूर्वी तिब्बत में ल्हासा में उनको सिंहासनारुढ़ करने हेतु ले जाने के लिए मांचू नरेश ने संरक्षक के नाते सैनिक संरक्षक दल भेजने का प्रस्ताव किया।

जुंगर मंगोलों ने 1717 में तिब्बत पर आक्रमण करके उसे तीन वर्ष से अपने अधिकार मे लिया हुआ था और अब भी जनता को धमकियां दे रहे थे। तिब्बत सरकार की सहमति से चीन नरेश के सैनिकों ने सुरक्षा प्रदान की। कुछ वर्ष पश्चात् नरेश ने ल्हासा में दो मांचू अम्बन (स्थायी दूत) भी नियुक्त कर दिये ताकि वे उसका प्रतिनिधित्व करें और दलाई लामा के सुरक्षा कर्मी भी बनें। जब मांचू सेनायें तिब्बत से चली गई तो भी दोनों दूत ल्हासा में ही बने रहे। समय पाकर वे प्रभावशाली हो गए और कभी कभार राज्य प्रबन्ध में भी दखल देने लगे। अपितु कुछ वर्षों से ऊपर किसी एक समय पर उनका प्रभाव बना न रह सका।

इन दूतों की ल्हासा में उपस्थिति को चीन वाले तिब्बत पर अपने प्रभुत्व का प्रमाण जतलाने की चेष्टा करते रहते हैं। तिब्बती स्रोत इस दावे का खंडन करते हैं। देज़ीदेरी जो कि 1716 से लेकर पांच साल तक ल्हासा में रहा, ने वस्तुस्थिति का यों वर्णन किया है :—

> "तिब्बत के सर्वोच्च लामा को न केवल द्वितीय तथा तृतीय तिब्बत में मान्यता तथा आदर प्राप्त है बल्कि नेपालियों, तातारियों और चीनियों द्वारा भी। वे उनकी पूजा करते हैं और उन्हें भेंट चढ़ाते हैं। समस्त तिब्बत के एकमात्र स्वामी होने के नाते धार्मिक तथा प्रबन्धकीय मामलों पर उनका शासन चलता है। .. चीनी नरेशों ने उनके प्रति अपने अगाध आदर को प्रदर्शित किया है, प्रायः उन्होंने उपहार देकर राजदूतों को भी उनके पास भेजा है।"

हंक तथा गेबे—दो लाज़ारी पादरियों द्वारा जो कि 1846 के आस पास ल्हासा में थे, प्रकट किया गया मत भी देज़ीदेरी के मत की पुष्टि करता है। वे लिखते हैं कि "तिब्बत की सरकार पोप सरकार जैसी है तथा चीनी (अर्थात मांचू) दूतों की स्थिति वही है जो रोम स्थित आस्ट्रियन दूत की।"

1792 में नेपाल के गोरखों ने तिब्बत पर आक्रमण कर दिया। दलाई लामा ने (चीनी) नरेश से सहायता मांगी परन्तु चीनी सैनिकों के पहुंचने से पूर्व ही गोरखे पराजित हो चुके थे। अतः इस बार भी मांचू सैनिक तिब्बती प्रशासन की अनुमति से ही तिब्बत में दाखिल हुए थे।

यद्यपि आज चीनी दावा करते हैं कि इसी अवधि में चीन का तिब्बत पर प्रभुत्व व प्रभुसत्ता कायम हुई फिर भी यह दावा तत्कालीन तथ्यों तथा चीन-तिब्बत सम्बन्धों की मूल भावना का खंडन करता है। "प्रभुत्व अथवा "प्रभुसत्ता" अस्पष्ट संदिग्ध शब्द हैं जो कि पश्चिमी राजनैतिक शब्दावली से लिये गये हैं तथा वे महागुरु तथा शिष्य के विशिष्ट बौद्ध रिश्ते को वर्णित करने में अनुपयुक्त हैं। सब तिब्बती दस्तावेज़ जो तिब्बती लामाओं तथा मंगोल और मांचू शासकों के सम्बन्धों का ज़िक्र करते हैं इस रिश्ते के लिये "चो योङ" शब्द का प्रयोग करते हैं जिसका अर्थ है "आध्यात्मिक गुरु—धार्मिक शिष्य"। चीनी ऐसी कोई भी लिखित दस्तावेज प्रस्तुत करने में असमर्थ हैं जिस पर तिब्बती हस्ताक्षर हों या मोहर लगी हो और उसमें चीनी प्रभुसत्ता तो क्या चीनी प्रभुता को भी मान्यता प्रदान की गई हो।

चीन वाले इस बहानेबाजी में सदैव निपुण रहे हैं कि जिस भी विदेशी शक्ति से इनके थोड़े भी सम्बन्ध रहे उसको इन्होंने चीन के अधीनस्थ कह दिया। यह सर्वविदित है कि इंग्लैड की महारानी विक्टोरिया तथा पोप ने चीन में जब अपने दूत भेजे तो मांचू नरेश ने अपने उन "अधीनस्थों" द्वारा भेजे गये उपहारों के लिए आभार प्रकट किया। परवर्ती चीनी इतिहास ग्रन्थों में इंग्लैंड, वेटीकैन, हालैंड, पुर्तगाल, रुस तथा अनेक एशियाई देशों को चीन के "अधीनस्थ" देशों की सूची में ही रखा गया।

इन्टरनेशनल कमीशन आफ जूरिस्ट्स (अन्तर्राष्ट्रीय विधि विशेषज्ञ आयोग) द्वारा तिब्बत के सम्बन्ध में गठित कानूनी जांच समिति ने अपनी रिपोर्ट "तिब्बत एण्ड दी रूल आफ ला" में तिब्बत की स्वतन्त्र स्थिति के बारे में अनभिज्ञता की ओर यों संकेत किया है—

> "लगता है कि चीनी अर्थात मांचू दूतों की ल्हासा में उपस्थिति से दार्जीलिंग स्थित बर्तानवी प्रतिनिधि ने यह धारणा बना ली कि चीन का कम से कम कुछ कुछ वास्तविक प्रभुत्व तो तिब्बत पर था। अतः 1876 में बर्तानिया तथा चीन के मध्य एक सन्धि हुई जिस में, और बातों के अतिरिक्त, यह भी तय हुआ कि चीन सरकार तिब्बत में खोजहित जाने वाले एक ब्रिटिश शिष्टमंडल के लिये उपयुक्त प्रबन्ध जुटाएगी। चीन सरकार को तिब्बत सरकार के बाधा विरोध का सामना करना पड़ा क्योंकि तिब्बत ने इस सम्मेलन को मान्यता नहीं दी। अतः अंग्रेजों ने भी तिब्बत जाने की कोई चेष्टा नहीं की और 1886 में तिब्बत पहुंचे बिना ही यह शिष्ट मंडल भंग करना पड़ा। बर्तानिया के चीन के साथ सम्बन्ध चलते रहे तथा जिस सीमा तक बर्तानिया-चीन समझौते द्वारा दिए गए अधिकार प्राप्त कराने में चीन का महत्व था उसी सीमा तक वह समझौता बर्तानिया के लिए तिब्बत पर चीनी अधिकारों का द्योतक मार्ग-दर्शक बनता गया।

1893 में बर्तानिया तथा चीन के मध्य व्यापार नियमों पर हस्ताक्षर किए गए। तिब्बत सरकार इस अनुबन्ध में भागीदार नहीं थी; अतः उसने इसकी शर्तों के पालन से इन्कार कर दिया जैसे कि उसने 1876 की कन्वेंशन को मानने से किया था। इन अनुबन्धों की शर्तों को बल-पूर्वक मनवाने के लिए 1903 में ब्रिटेन ने तिब्बत पर आक्रमण कर दिया। तिब्बती सेना को परास्त कर कर्नल यंग हज़बेंड ल्हासा पहुंचा तथा उसने 7 सितम्बर 1904 को तिब्बत सरकार की एक द्विपक्षीय सन्धि पर हस्ताक्षर करने को बाध्य किया। इस सन्धि में ब्रिटेन तथा तिब्बत दो ही वर्ग थे। उपरोक्त सन्धि का नवां अनुच्छेद यों है :—

9. तिब्बत सरकार वचन बद्ध है कि बिना ब्रिटिश सरकार की पूर्व सहमति के :—

(क) तिब्बती प्रदेश का कोई भी भू-भाग किसी भी विदेशी शक्ति को न हस्तान्तरित किया जाएगा न बेचा जायेगा, न पट्टे पर दिया जायेगा, न गिरवी रखा जायेगा, न किसी प्रकार से किसी को अधिग्रहण करने दिया जायेगा;

ख) ऐसी किसी भी शक्ति को तिब्बत के मामलों में दखल देने की अनुमति न दी जाएगी;

ग) किसी भी विदेशी के प्रतिनिधि अथवा एजेंट को तिब्बत प्रवेश की अनुमति न होगी;

घ) किसी भी विदेशी शक्ति अथवा उसके अधीनस्थ को रेलवे, सड़कों, टेलीग्राफ, खनन सम्बन्धी कोई भी रियायतें अथवा अन्य कोई अधिकार न दिये जायेंगे। यदि ऐसे अधिकारों को अनुमति मिल जाए तो वैसी ही और उतनी ही रियायतें ब्रिटिश सरकार को भी दी जायेंगी।"

ङ) किसी प्रकार की तिब्बती आय, चाहे धन राशि के रुप में, चाहे वस्तु रुप में, किसी भी विदेशी शक्ति को अथवा अन्य उसके किसी अधीनस्थ व्यक्ति को नहीं दी जायेगी, न उसके नाम अनुबन्धित की जायेंगी।"

पीकिंग की शाही सरकार उपरोक्त कन्वेंशन (समागम) में भागीदार न थी। वास्तविकता तो यह है कि आक्रमण के समय उसने न कोई विरोध प्रकट किया और न ही ब्रिटिश सेनाओं का मुकाबला किया जैसे कि वह कर सकती थी यदि तिब्बत चीन का अभिन्न अंग होता या मांचू साम्राज्य का संरक्षित प्रदेश होता।

तत्कालीन स्थिति का उपयुक्त वर्णन भारत के वायसराय लार्ड कर्जन के इन शब्दों में हुआ है—"तिब्बत पर चीन की प्रभुता एक संवैधानिक गल्प है, एक ढोंग जिसे केवल मात्र दोनों पक्षों की सुविधा के लिए जीवित रखा गया है।"

1906 में चीन ने अंग्रेजी तिब्बती सन्धि की मान्यता के रुप में बर्तानिया के साथ एक कन्वेंशन पर हस्ताक्षर किए, परन्तु एक वर्ष

पश्चात ही ईरान, अफगानिस्तान तथा तिब्बत से सम्बन्धित एक द्विपक्षीय समझौते के अनुसार ब्रिटिश तथा रुसियों ने तिब्बत पर चीन के प्रभुत्व को स्वीकार कर लिया। इसके अनुसार हस्ताक्षर करने वाले दोनों देशों के एशिया-स्थित प्रभाव क्षेत्रों को भी रेखांकित किया गया। क्योंकि न तिब्बत न चीन इस सन्धि पर हस्ताक्षर करने वालों में थे इसलिए कानूनी तौर पर इसका अंग्रेजी-तिब्बती सम्बन्धों पर कोई प्रभाव न पड़ सकता था। तथापि इसके द्वारा मांचू सरकार को तिब्बत पर अपना नियंत्रण जमाने के प्रयत्नों में बढ़ावा मिला। 1910 में चीनी मांचू सेनाओं ने तिब्बत पर धावा बोल दिया।

1910 का मांचू आक्रमण तिब्बत के उसके पूर्ववर्ती पड़ोसी के साथ सम्बन्धों में एक नया मोड़ का कारण बना। इससे पहले के मांचू (सैनिक) अभियान दलाई लामा की सहायतार्थ आयोजित हुए थे और उन द्वारा कभी तिब्बत के राज प्रबन्ध को हथियाने का प्रयास न हुआ था। चिंग साम्राज्य के पास आधुनिक हथियार तथा आधुनिक प्रशिक्षण था; उसे पूर्व कालीन शिष्टाचार से, जिसमें राजनीति तथा धर्म का सम्मिश्रण होता था, भी कोई वास्ता न था सैनिक सफलता के बावजूद भी तिब्बत पर उनका कब्जा बहुत अल्पकालीन रहा।

1911 में जब मांचू वंश का पतन हुआ तो तिब्बत स्थित शाही सेनाओं ने विद्रोह कर दिया और तिब्बत के लोगों ने भी उन पर आक्रमण कर दिया। अगले वर्ष ही उन्होंने तिब्बती सैनिकों के आगे हथियार डाल दिए और उन्हें वापिस चीन को निष्कासित कर दिया गया।

1913 में तेरहवें दलाई लामा तथा तिब्बत की राष्ट्रीय असेम्बली ने तिब्बत की स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी।

इस संदर्भ में बलगारिया का उदाहरण पर्याप्त है। बलगारिया जो तुर्की साम्राज्य के प्रभुत्व के नीचे था ने भी 1980 में इसी प्रकार की घोषणा की थी जिसमें कि तुर्की के प्रभुत्व को रद्द किया था। तुर्की के इस प्रभुत्व को 1878 की बर्लिन सन्धि के अन्तर्गत यूरोपिय समुदाय

ने मान्यता प्रदान की हुई थी परन्तु बलगारिया द्वारा की गई एक पक्षीय घोषणा को विश्व समुदाय ने स्वीकृति दे दी यद्यपि तिब्बत ने कभी चीन के प्रभुत्व को स्वीकार नहीं किया था तो भी तेरहवें दलाई लामा की घोषणा भी उस (अर्थात बलगारिया की) घोषणा जैसी थी और अन्तर्राष्ट्रीय कानून की दृष्टि में वैसी ही अर्थपूर्ण।

1913 में तिब्बत तथा मंगोलिया के मध्य एक सन्धि हुई जिसके अनुसार दोनों ने एक दूसरे की स्वतन्त्रता को मान्यता प्रदान की।

इस प्रकार तिब्बत ने अपने पूर्णतया स्वतन्त्र होने की बात दोहराई थी।

बीसवी शती में तिब्बत के विदेश सम्बन्ध

सन-यत-सेन द्वारा स्थापित किए गए नये चीनी गणराज्य से तिब्बत पूर्णतया स्वतन्त्र था। परन्तु चीन के प्रधान युआन शी काई का दावा था कि तिब्बत चीन का एक अंग था; अतः इस दावे को चरितार्थ करने के लिए उसने एक सैनिक अभियान तिब्बत भेजने की सोची। इस उद्देश्य से कि चीन और तिब्बत के मध्य एक लम्बा संघर्ष न छिड़ जाये, ब्रिटिश मध्यस्थता के फलस्वरुप भारत के नगर शिमला में अक्तूबर 1913 में एक त्रि-पक्षीय सम्मेलन का आयोजन किया गया। तिब्बत, चीन तथा बर्तानिया के प्रतिनिधियों ने समान अधिकार में एक बैठक में भाग लिया तथा समझौता वार्ता की।

बर्तानिया भारत की उत्तरी सीमा पर शान्ति का इच्छुक था; अतः इस सम्मेलन में उसने तिब्बत को चीन के नाम मात्र प्रभुत्व को स्वीकार करने के लिये मना लिया इस शर्त पर कि चीन तिब्बत की प्रादेशिक अखण्डता तथा पूर्ण स्वायत्तता का वचन देगा। घटनाक्रम यों हुआ कि चीन सरकार बाद में इस अनुबन्ध पर हस्ताक्षर करने से मुकर गई।

3 जुलाई 1914 को तिब्बत तथा ब्रिटिश प्रतिनिधियों ने इस अनुबन्ध पर हस्ताक्षर कर दिये तथा उन्होंने एक द्विपक्षीय घोषणा पर हस्ताक्षर किए जिसके अनुसार चीन के लिए उन सब रियायतों का

निराकरण कर दिया गया जो कि उसे उपरोक्त अनुबन्ध के अनुसार प्राप्त थीं। अंग्रेजी तिब्बती घोषणा से एक उद्धारण :—

> "हम, बर्तानिया तथा तिब्बत के प्रतिनिधि दूत, यहां इस आशय की निम्नलिखित घोषणा को अंकित करते हैं कि हम संलग्न कन्वेन्शन को जो हस्ताक्षरित है बर्तानिया तथा तिब्बत की सरकारों पर लागू मानते हैं, तथा हम सहमत हैं कि जब तक चीन की सरकार उपरोक्त कन्वेन्शन को हस्ताक्षरित नहीं करती वह उससे उत्पन्न होने वाले सब विशेषाधिकारों से वंचित रहेगी। एतदर्थ प्रमाण स्वरुप हमने इस घोषणा पर हस्ताक्षर कर दिए हैं तथा मोहर लगा दी है दो प्रतियां अंग्रेजी में तथा दो प्रतियां तिब्बती भाषा में।"

इसके अनुसार तिब्बत का दर्जा वही रहा जो कि कन्वेन्शन में प्रवेश से पूर्व था एक स्वतन्त्र राज्य का दर्जा जिसकी चीन के प्रति कोई प्रतिबद्धता नहीं थी।

1934 में तेरहवें दलाई लामा के निधन पर चीन द्वारा भेजे शोक-दल की तिब्बत सरकार ने ल्हासा में अगवानी की। उस समय एक चीनी प्रतिनिधि को वहां रुक जाने की अनुमति प्रदान की गई तथा उसे वही दर्जा दिया गया जो कि नेपाली तथा ब्रिटिश प्रतिनिधियों को प्राप्त था। यह प्रतिनिधि 1949 में (तिब्बत से) अपने निष्कासन तक वहां रहा।

द्वितीय विश्वयुद्ध में ब्रिटिश तथा अमरीकी सरकारों ने अपने सहयोगी चीन के लिये तिब्बत के रास्ते युद्ध सामग्री लेकर जाने की अनुमति मांगी। राष्ट्रपति रुज़वेल्ट ने तिब्बत का सहयोग प्राप्त करने हेतु अपने प्रतिनिधि ल्हासा भेजे परन्तु तिब्बत सरकार अपनी गुट-निरपेक्ष नीति पर अड़िग रही तथा उसने अपने इलाके से केवल असैनिक सामग्री ले जाने की ही अनुमति दी।

भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति से कुछ ही मास पूर्व 1947 में दिल्ली

में होने वाली एशियन रिलेशन्ज़ कान्फ्रेंस (एशिया) सम्बन्ध सम्मेलन में भाग लेने के लिये निमन्त्रित किये गये तिब्बत के प्रतिनिधि मंडल के सदस्यों ने तिब्बती पासपोर्टों से यात्रा की और एक स्वतन्त्र राष्ट्र के प्रतिनिधियों के रुप में भाग लिया।

भारत में सत्ता हस्तान्तरण के पश्चात् भारत को बर्तानिया की तिब्बत से हुई सन्धियों के पालन का दायित्व मिला तथा दोनों सरकारें उन्हीं सम्बन्धों पर आधारित द्विपक्षीय सम्बन्धों को जारी रखने पर सहमत हुईं।

1948 में जब तिब्बत सरकार का व्यापार शिष्टमंडल भारत, फ्रांस इटली, बर्तानिया तथा अमरीका के दौरे पर गया तो तिब्बत सरकार द्वारा दिए गए उसके पासपोर्टों को इन तथा अन्य देशों की सरकारों ने वैध माना। यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि सदा ही तिब्बत की अपनी डाक व तार सेवायें तथा प्रशासकीय सेवायें अपने अलग सिक्के तथा पत्र मुद्रा, एक राष्ट्रीय सेना तथा अपने ही गोली सिक्के के कारखाने भी रहे थे।

उपरिलिखित तथ्य ऐतिहासिक तथ्यों में से कुछ एक हैं जो तिब्बत के एक स्वतन्त्र राष्ट्र रहने के परिचायक हैं' जब 1949 में साम्यवादी चीन ने तिब्बत पर आक्रमण किया तो वह एक स्वतन्त्र राष्ट्र की स्थिति में था और उन सब मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता था जो राज्यत्व की परिभाषा है अर्थात एक कौम, एक निर्धारित भू-भाग तथा वह राज्य सत्ता जो दूसरे देशों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम थी।

उपरोक्त निष्कर्षों को इस विषय से सम्बन्ध रखने वाले लगभग सब विद्वानों का समर्थन प्राप्त है। □

क्या आप जानते हैं ?

★ बारह लाख से अधिक तिब्बती मारे जा चुके हैं।

★ 6000 से अधिक मठों को नष्ट किया गया है।

★ हजारों तिब्बती चीन की जेलों में कैद हैं।

★ परम-पावन दलाई लामा को 1959 में तिब्बत छोड़ने को मजबूर किया गया है।

★ 60 लाख तिब्बती जनता पर 75 लाख चीनी नागरिकों की भीड़ लाद दी गई है।

★ चीनी उपनिवेशवाद के विरुद्ध शांतिपूर्ण प्रदर्शन करने पर तिब्बती लोगों की गिरफ्तारी और हत्या की जाती है।

★ तिब्बत का प्राकृतिक पर्यावरण रासायनिक एवं परमाणविक हथियारों का भंडारण करके नष्ट किया जा रहा है।

इम्पीरियल प्रिंटिंग प्रैस के. बी. धर्मशाला (फोन : 2390)